बृहद्धर्म पुराण में शिवतत्त्व

उपपुराणों में इस पुराण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्म संबन्धी तथ्यों का विस्तृत विवेचन होने से इसे बृहद्धर्म कहा गया है। इसमें चारों वर्णों, आश्रमों, तीर्थों तथा देवी-देवताओं के पूजन तथा माहात्म्य संबन्धी अनेक बातों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह पुराण पूर्व, मध्य तथा उत्तर-तीन खण्डों में विभक्त है। पूर्व और मध्यखण्ड के अध्यायों की गिनती एक ही क्रम से की गई है जबकि उत्तरखण्ड के अध्यायों की गिनती स्वतंत्ररूप से की गई है। पूर्व और मध्यखण्ड में कुल अध्यायों की संख्या 60 है जिनमें से पूर्वखण्ड के 30 अध्याय हैं। उत्तरखण्ड में कुल 14 अध्याय ही हैं। इस पुराण में यद्यपि अन्य देवों की अपेक्षा भगवान् विष्णु की चर्चापर ज्यादा बल दिया गया है तथापि इसमें अन्य देवों-देवियों का भी उचित स्थान है। इस पुराण के कई पाठान्तर मिलते हैं।[1]

भगवान् शिव का स्वरूप

लक्ष्मी की पूजा से जब शिव प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हो वर देते हैं तो वे उस समय उनकी स्तुति में उन्हें शान्तस्वरूप, तीनों कारणों के हेतु(अथवा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के हेतु), परमेश्वर, आत्मा की गति, शशिधर, अमल, त्रिनयन, देवाधिदेव, त्रिगुणमय, सुख के समुद्र, कल्याणकारी, पार्वतीपति, साकार, रवि तथा शशीनेत्रवाले, स्वेच्छा से सृजन, हरण एवं पालन करनेवाले, भूतनाथ, सर्वेश, नील एवं श्वेत मुखवाले, नीलकण्ठ, गुरु तथा दुःख हरनेवाले कहती हैं(बृहद्धर्म पुराण/पूर्वखण्ड/10/71-78)।

ॐनमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।

सृजसि हरसि पासि स्वेच्छया त्वं कथन्तद्।(बृहद्ध. पुराण/पूर्वखण्ड/ 10/71, 76)

अर्थात्-तीनों कारणों(अर्थात् जगत् के उपादान, निमित्त आदि कारण) अथवा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के हेतू तथा ॐकारस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है। शिव के बारे में ऐसा कहा जाता है कि वे स्वेच्छा से जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं।

एक स्थलपर कहा गया है कि भगवान् शिव स्वयं अपनी इच्छा से अवतार लेकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तथा पालनकर्त्ता विष्णु बनते हैं।

एवं ससर्ज वै ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता सनातनः।

विष्णुः पालयते सर्व्वमवतीर्य्य निजेच्छया।। (बृहद्ध. पुराण/मध्यखण्ड/ 32/45)

दधीचि शिवा को प्रकृति तथा शिव को परमपुरुष कहते हैं(बृहद्ध. पुराण/म. ख./ 33/40)। किसी प्रसंग में नीलकुन्तल(सती की सखी) ने शिव को विश्वेश(जगत् के पति), सनातन, इन्द्रादि

---

1. प्रस्तुत निबंध 'बृहद्धर्म पुराण' की चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, की प्रति, जिसका सम्पादन महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने किया है, तथा 1974 में प्रकाशित है, पर आधारित है।

लोकपालों द्वारा पूज्य तथा अलक्ष्य लिंगवाला(अर्थात् जिनकी पहचान गुप्त है) कहा है(बृहद्ध. पुराण/म. ख./ 34/21, 23-24)। नन्दी ने शिव की स्तुति में उन्हें त्रिलोचन, तीनों गुणों को धारण करनेवाले, योगियों के वरण योग्य, शुभ-अशुभ से ऊपर, विधि एवं हरि का रूप धारण करनेवाले, प्रधान(प्रकृति) के स्वामी, सनातन, पुरातन एवं महेश्वर कहा है(बृहद्ध. पुराण/म. ख. /34/40-48)। सती ने शिव को देवदेव, महेशान, लोकों के स्वामी, मनोकामना को पूरा करनेवाले, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तथा पालनकर्त्ता विष्णु, त्रिगुणयुक्त, अव्यक्त, तमस का आश्रय लेकर व्यक्त होकर समस्त स्थावर-जंगम का संहार करनेवाले, देवदेवेश, वर देनेवाले तथा ईश्वर आदि कहा है।(बृहद्ध. पुराण/ म. ख./36/14-15)

त्वं सृष्टिकारको ब्रह्मा त्वं विष्णुः पालने रतः।
त्वं वै त्रिगुणमव्यक्तो व्यक्तं धरसि तामसः।।
हरः संहर मे विश्वं सर्व्वं स्थावरजङ्गमम्। (बृहद्ध. पुराण/ म. ख./ 36/15-16)

अर्थात्-तुम(शिव) सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा तथा पालन में रत रहनेवाले विष्णु हो। तुम त्रिगुणयुक्त अव्यक्त हो तथा तमस को धारणकर व्यक्त हो विश्व के समस्त स्थावर-जंगम का संहार करते हो।

किसी संदर्भ में सती ने शिव को महादेव, शान्त, बन्धु, कृपा करनेवाला, अद्वेषी, सभी भूतों की आत्मा, कूटस्थ तथा जगदीश्वर कहा है।

स मे भर्त्ता महादेवः शान्तो बन्धुः कृपाकरः।
अद्वेषी सर्वभूतात्मा कूटस्थो जगदीश्वरः ।। (बृहद्ध. पुराण/म. ख./37/58)

दक्ष अपने यज्ञ के विध्वंस हो जाने पर शिव की गरिमा से परिचित हो उनकी स्तुति करते हैं। और वे अपनी स्तुति में उन्हें देवदेवेश, सुरासुरपूजित, विश्वेश, भगवान्, आदि कर्त्ता, विश्व के आदि, विश्व के रक्षक, सर्वभूतात्मा, परम गति, अनन्त, पुरातन, सनातन, परमात्मा, क्षमाशील, आशुतोष, करुणासागर, शान्त, प्रजापति, विश्वेश्वर, विश्वबन्धु, केवलानुभवानन्दस्वरूप, परमेश्वर, विश्वरूप, काल, कालकर्त्ता, जटाधारी, कूटस्थ, केवल, परमानन्दविग्रह, पूर्ण, गौरांग, सद्बुद्धिदाता, सात्त्विक, भस्मविभूषित, जीवरूप, वेदो द्वारा अगम, वेदकर्त्ता, विष्णु, ब्रह्मा, शास्त्रकर्त्ता तथा समस्त स्थावर-जंगम को अपने उदर में समेटे रखनेवाला आदि-आदि कहा है(बृहद्ध. पुराण/म. ख./39/1-28)। स्तुति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

त्वमात्मा सर्व्वभूतानां त्वं गतिः परमा ततः।
त्वं भवो भगवानादिस्त्वमनन्तो भवापहः।।
हरः सनातनो देवः परमात्मा परेक्षितः।।
क्षमाशीलश्चाशुतोषः सन्तोषश्च प्रतोषकः।

करुणासागरः शान्तः कमनीयः प्रजापतिः।।
त्वं विष्णुस्त्वञ्च वै ब्रह्मा राजसस्तामसो भवान्।।

अर्थात्-तुम(शिव) सभी भूतों की आत्मा तथा उनकी परमगति(अर्थात् अन्तिम लक्ष्य) हो। तुम इस संसार के नाशक तथा अनादि-अनन्त भगवान् हो। तुम दुःख को हरनेवाले, सनातन देव, परमात्मा तथा सबका ध्यान रखनेवाले हो। तुम क्षमाशील, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले(आशुतोष) संतोष की मूर्ति तथा आनन्द प्रदान करनेवाले हो। तुम करुणासागर, शान्त, कमनीय तथा प्रजापति हो। तुम विष्णु, ब्रह्मा, रजस् एवं तमस् हो(बृहद्ध. पुराण/म. ख./39/4-6, 24)।

भगीरथ की तपस्या से भयभीत हो देवगण भगवान् शिव के पास जाकर स्तुति करते हैं। वे लोग अपनी स्तुति में शिव को देवदेव, महादेव, चन्द्रमौली, महेश्वर, त्रिलोचन, पंचवक्त्र, नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, क्षिति, जल आदि अष्टमूर्तिरूप, विष्णुरूप तथा पशुपति आदि कहते हैं।(बृहद्ध. पुराण/मध्य खण्ड/49/27-37)

शिव के स्वरूप संबंधी उपरोक्त उद्धरणों से शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपोंपर प्रकाश पड़ता है। निर्गुणरूप में वे ओंकार, अव्यक्त, परमात्मा, वेदो द्वारा अगम्य तथा परमगति हैं। सगुणरूप में वे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के स्रष्टा, विश्वरूप, स्थावर-जंगम सबके स्रष्टा, पंचमुखी, त्रिनेत्र, शशी, बाघाम्बर, मुण्डमाला, पिनाक तथा त्रिशूल धारण करनेवाले, आशुतोष, आनंद प्रदान करनेवाले, करुणासागर, सर्वेश, सनातन तथा आदिपुरुष जैसे अनेक विशेषणों तथा संज्ञाओं से युक्त हैं।

शिवोपासना

भगवान् शिव को पूजनीयों में श्रेष्ठतम(**नास्ति शम्भुसमः पूज्यो**, पूर्वखण्ड/2/34), आवागमन से छुटकारा दिलानेवाला, इष्टसाधक(**भवहरमिष्टसाधकम्**, मध्यखण्ड/38/53), आशुतोष(मध्यखण्ड/38/77, 39/6 आदि), परमगति(मध्यखण्ड/39/4), क्षमाशील, करुणासागर(मध्यखण्ड/39/6), विश्वबन्धु (मध्यखण्ड/39/7), तथा उद्धारकर्त्ता(मध्यखण्ड/39/44) आदि कहा गया है । संक्षेप में उन्हें भोग-मोक्ष का दाता तथा आशुतोष कहा गया है। भगवान् शिव की उपरोक्त विशेषतायें ही उनकी पूजा के आकर्षण हैं।

भगवान् शिव सुर, असुर, मानव, यक्ष तथा किन्नर आदि सभी द्वारा पूजे जाते हैं(**स्मरन्ति वै सुरनर किन्नरादयः।** मध्यखण्ड/38/53)। लक्ष्मीजी शिवपूजन के प्रभाव से विष्णु की प्रिया बनीं, भगीरथ ने गंगा को धरतीपर लाने में सफलता प्राप्त की तथा दक्ष ने गणेश्वर का पद पाया। राम ने रामेश्वर की स्थापना की जिसके पूजन से लोग मुक्तिलाभ उठाते हैं। भगवान् शिव इतने दयालु एवं आशुतोष हैं कि उन्होंने अपने आजन्मनिन्दक दक्ष को स्तुतिमात्र से मुक्ति प्रदान कर दिया। इसी कारण से प्रयत्नपूर्वक महेश्वर का भजन करना चाहिये। घोर संसार से व्यक्तियों के एकमात्र उद्धारक शिवजी ही हैं।

पश्याम्यार्त्तदयालुत्वं हरस्याप्याशुतोषताम् ।
आजन्मनिन्दको दक्षः सकृत् स्तुत्वा विमुक्तिभाक् ।।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेनभज देवं महेश्वरम् ।
घोरसंसारतः पाता शिव एको महेश्वरः ।। (बृहद्ध. पु./म. ख./39/42-43)

एक स्थलपर कहा गया है कि जहाँ शम्भु की पूजा नहीं होती उस(धार्मिक) कर्म या कृत्य की पूर्णता नहीं मानी जाती(**न यत्र पूज्यते शम्भुस्तत्कर्म न समाप्यते।** मध्यखण्ड/39/28)। आगे कहा गया है कि "श्रुति का प्रमाण है कि भवदुःख की शान्ति के लिये भगवान् शिव के नाम से भिन्न कोई दवा नहीं है।"

भवव्याधिशान्त्यै भवन्नामभिन्नं
न भैषज्यमास्ते श्रुतिस्तत्प्रमाणम् ।। (बृहद्ध. पु./ मध्यखण्ड/39/31)

शिवनाम की महिमा को पुनः बताते हुए कहा गया है कि "शिव" यह दो अक्षरवाला नाम अमंगलों का नाशक तथा इसका स्मरण पाप के ढेर को नष्ट करनेवाला है। जिसका नाम ही तीनों लोकों का उपकार करनेवाला है तो साक्षात् उसके भजन की उपकारिता का क्या कहना।

शिवेति द्व्यक्षरं नाम यस्यामङ्गलनाशकम्।।
केवल स्मरणेनैव पापराशीन्निवारयेत्।
यस्य वै नाम्न एतादृक् त्रैलोक्ये ह्युपकारिता।।
किं तस्य साक्षाद्भजतामुपकारित्वमुच्यते।। (बुहद्ध. पु./ म. ख./37/59-60)

भगवान् शिव के नामों जैसे शिव, शंकर, पंचानन, महारुद्र, त्रिलोचन, हर, ईशान, पार्वतीनाथ, गंगेश, गंगाधर, सतीपति, मृड, भीम, शम्भो, भूतपति आदि का पाठ करते हुए या उन्हें सुनते हुए जो मनुष्य शरीर को छोड़ देता है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

शिव शङ्कर पञ्चास्य महारुद्र त्रिलोचन।।
हरेशानेश देवीश नीलकण्ठाब्जलोचन।
पार्वतीनाथ गङ्गेश गङ्गाधर सतीपते।।
मृड भीम गुरो नाथ शम्भो भूतपते पर।
एवं शृण्वन् पठन्मर्त्यो मृतः किं नहि साधयेत।। (बृहद्ध. पु./ म. ख./56/67-69)

यदि सभी देवों की पूजा करके शिव की पूजा न की जाय तो वह पूजा एवं यज्ञ व्यर्थ होता है। शंभु की पूजा से अन्य सभी देव संतुष्ट हो जाते हैं।

सर्व्वदेवांस्तु संपूज्य न पूज्येते शिवो यदि ।
तदा वृथासमा पूजा प्रमाणं तत्र ते मखः ।।
...।

शिवौ संपूजयेद् यस्तु तेन तस्य कृतार्थता ।। (बृहद्ध. पु./ म. ख./39/53-54)

शिवलिंगपूजा की विधि बताते हुए कहा गया है कि देवीसहित(अर्घा या वेदीसहित) लिंग का निर्माण करना चाहिये। सोने आदि धातुओं अथवा मिट्टी का लिंग बनाया जा सकता है। यह लिंग अँगूठे के बराबर हो तथा वेदी सोमसूत्र से युक्त हो। अँगूठे के प्रमाण से लिंग बड़ा हो सकता है, किंतु इससे छोटा नहीं होना चाहिये। लिंगनिर्माण के लिये मिट्टी लेने से पहले स्नान कर लेना चाहिये। लिंगनिर्माण के लिये गंगा की मिट्टी खोदने से कोई पाप नहीं लगता। लिंगनिर्माणकर विविध उपचारों से उसकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये।(बृहद्ध. पु./मध्य खण्ड/57/33-40)

भगवान् शिव को बिल्वपत्र तथा गंगाजल परम प्रीतिकर हैं अत: शिवपूजन में इनका प्रयोग अति लाभदायक सिद्ध होता है। गंगातटपर की जानेवाली शिवपूजा का फल अवर्णनीय है।

बिल्वपत्रञ्च शम्भोर्हि परमप्रीतिदायकम्।।
केवलं गाङ्गतोयं वा शिवप्रीतिकरं परम्।
गंगा तटे शम्भुपूजां यश्चिकीर्षति चेतसा।।
वक्तुं तस्य फलं विप्र सहस्रास्यो जड़ायते।
बिल्वपत्रं गाङ्गतोयं यः प्रयच्छति शम्भवे।।
तयोरन्यतरद्वापि किं न दत्तं शिवाय तत्। (बृहद्ध. पु./म. ख./57/41-44)

भगवान् शिव लक्ष्मी को वर देते समय कहते हैं कि स्वर्ण, मुक्ता, प्रवाल आदि के फूल तथा अनान्य पुष्प, श्रीफलपत्र(बिल्वपत्र) की करोड़वी कला के बराबर भी नहीं हैं। जिस प्रकार मुझे अपने तीनों नेत्र तथा गंगाजल प्रिय हैं उसी प्रकार तीन दलों से युक्त बिल्वपत्र भी प्रिय है।

स्वर्णमुक्ताप्रवालादिपुष्पाण्यन्यानि च ध्रुवं।
श्रीफलच्छदने शस्यकलां नार्हन्ति कोटिकां।
यथा मे त्रीणि नेत्राणि यथा गङ्गाजलं मम।
तथा प्रियतमो लक्ष्मि त्रिपत्रः श्रीफलच्छदः।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/68-69)

इस पुराण का पूरा एक अध्याय(पूर्वखण्ड अध्याय 11) बिल्व की महिमा से भरा पड़ा है। यहाँपर हम उसका सारांश दे रहे हैं। बिल्व के कोमल पत्तों में देवताओं तथा तीर्थों का वास होता है जो पाप को हरनेवाले होते हैं। बिल्वपत्र के बायें पत्ते को ब्रह्मा, दायें को विष्णु तथा ऊपरवाले को शिव समझना चाहिये। इसे पैर से लाँघना नहीं चाहिये। लाँघने या पैर से स्पर्श करनेपर श्री एवं आयु का नाश होता है। बिल्ववृक्ष भी शिव को सदैव प्रिय है। निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर बिल्ववृक्ष को साष्टांग प्रणाम करना चाहिये।

ॐ नमो बिल्वतरवे सदा शङ्कररूपिणे।
सफलानि ममाङ्गानि कुरुष्व शिवहर्षद।। (बृहद्ध. पु./पूर्व खण्ड/11/14)

शिवपूजकों का बिल्ववृक्ष का स्पर्श पापनाश करनेवाला होता है। '**ॐ द्रुमाय श्रीफलाय नमो**' इस दशाक्षर मन्त्र से बिल्व की पूजाकर इसका जप करना चाहिये। तथा निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर भक्तिभाव से पूजा के लिये बिल्वपत्र तोड़ना चाहिये।

पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफल प्रभो।
महेशपूजनार्थाय त्वत्पत्राणि चिनोम्यहं।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./11/20)

अखण्डित बिल्वपत्र से शिव की पूजा करें। छः महीने के बाद ही बिल्वपत्र पर्युषित(बासी) माना जाता है-

षण्मासानन्तरं बिल्वपत्रं पर्य्युषितं भवेत् (बृहद्ध. पु./पू. ख./11/23)

जहाँपर बिल्ववृक्ष का वन है वहीं वाराणसी पुरी है(बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/24)। पाँच बिल्ववृक्ष जहाँपर होते हैं वहाँ शिव विराजमान रहते हैं। सात वृक्ष जहाँपर होते हैं वहाँपर दुर्गासहित शिव विराजते हैं। एक बिल्ववृक्ष होनेपर भी शिव-पार्वती वहाँ विराजते हैं। जहाँपर दस बिल्ववृक्ष होते हैं, वहाँ शम्भु अपने गणों के साथ विराजमान रहते हैं। बिल्ववृक्षतल सिद्धपीठ है(बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/30)। आँगन में इस वृक्ष को नहीं लगाना चाहिये। चैत्रादि चार मासों में भगवान् शंकर सदैव भ्रमण करते रहते हैं। इन दिनों नवीन बिल्वपत्र अर्पण करनेवाले को भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त होती है(बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/38)। इन चार मासों में बिल्वपत्र चढ़ाने से एक लाख गाय के दान का फल प्राप्त होता है।

चैत्रादिचतुरो मासान् शम्भवे परमात्मने।
दत्तं स्याद्बिल्वपत्रेकं लक्षधेनुसमं सुराः।। (बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/32)

दोपहर में बिल्ववृक्ष की परिक्रमा से सुमेरु की परिक्रमा का फल प्राप्त हो जाता है(बृहद्ध. पु/पूर्वखण्ड/11/33)।

इस पुराण में शिवपूजा तथा उसके नैवेद्य संबंधी कई प्रचलित बातों को बताने के बाद कहा गया है कि अन्त में अष्ट मूर्तियों की पूजाकर क्षमा याचनाकर विसर्जन कर देना चाहिये। शिवलिंग की पूजा करने से सभी देवताओं की पूजा हो जाती है -

शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्। (बृहद्ध. पु./मध्यख./57/59)

क्योंकि शिव-शिवा सर्वदेवमय हैं(**सर्व देवमयं शम्भुं**-बृहद्ध. पु./मध्यखण्ड/57/72)। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा अन्त्यज सभी को शिवपूजन का अधिकार है। अगर ये सभी लोग शिवपूजा[1] से विमुख हो अन्य देवों की पूजा करते हैं तो उनकी पूजा उसी प्रकार से विफल हो जाती है जिस प्रकार बिना मन्त्र के औषधि।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः स्त्री चान्त्यजोऽपि च।

1. यहाँ शिवपूजा का तात्पर्य परात्पर ब्रह्मरूप शिव की पूजा से है।

पराङ्मुखः शिवार्च्चायां योऽर्च्चयेद्देवतागणम्।।
विफलं तस्य तत्सर्वं यथौषधममन्त्रितम्। (बृहद्ध. पु./म. ख./57/62-63)

इस पुराण में शिवपूजन को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है इसमें यह कहा गया है कि बिना शिवपूजन के अन्नजलग्रहण करने की अपेक्षा मरजाना ठीक है। इतना ही नहीं बल्कि यह भी कहा गया है कि बिना शिवपूजन के अन्नजल को ग्रहण करनेवाला मनुष्यरूप में शूकर एवं कुत्ता है। उसका मुख भी नहीं देखना चाहिये।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम्।।
न त्वसम्पूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्।
शिवं नाभ्यच्चर्य यस्यास्ति रुचिर्भोजनकर्म्मणि।।
स एव शूकरः श्वा च मनुष्यरूपतां गतः।
.... मुखं तस्य न दृश्यते।।

(बृहद्ध. पु./म. ख./57/60-61, 66-67, 63 या 64)

शिव का नित्यपूजन इतना अनिवार्य बताया गया है कि सूतक तथा मृतक के अशौच की अवस्था में भी उसे नहीं छोड़ना चाहिये। केवल गुरु की मृत्युपर दशाहपर्यन्त पूजा को रोक देना चाहिये। अन्यथा अन्य सभी परिस्थितियों में शिव-पूजा जारी रखनी चाहिये।

सूतके मृतकेऽशौचे न त्यजेच्छिवपूजनम्।।
वर्जयित्वा दशाहन्तु महागुरुनिपातने। (बृहद्ध. पु./मध्य ख./57/67-68)

शिवपूजा के अन्त में प्रदक्षिणा और नमस्कार करना अवश्य याद रक्खें, परन्तु प्रदक्षिणा करते समय सोमसूत्र(अर्थात् लिंगपर गिराये जल को बाहर निकालनेवाली नाली) का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।[1]

अर्द्धचन्द्राकृतिः शम्भुप्रदक्षिणे नतिः स्मृता।
यत उत्तरतो गत्वा सोमसूत्रं न लङ्घयेत्।। (बृहद्ध. पु./ म. ख./57/73)

भगवान् शिव को भक्ति से प्राप्य बताया गया है(**देवदेव महेशान भक्तिलभ्य सनातन।** बृहद्ध. पु./म. ख./33/23)। लिंगपूजा भक्ति का एक प्रकार है। लिंगपूजा के अलावा शिव को प्रसन्न करने का उपाय पंचाक्षर मन्त्र जपना है। सती भी इसी मन्त्र का जप करती थीं(बृहद्ध पु./म. ख./33/23)। लक्ष्मीजी ने भी नारदजी से पंचाक्षर मन्त्र की दीक्षा लेकर शिव की उपासनाकर उन्हें प्रसन्न किया था। इस बात का संकेत हमें इस पुराण (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/61) में मिलता है।

शिवरात्रिव्रत के प्रसंग में बताया गया है कि रात्रि के चारों प्रहर में शिव की पूजा करनी

1. किन अवस्थाओं में इसका उल्लंघन हो सकता है-इसकी जानकारी के लिये इसी पुस्तक में शिवपूजा-संबंधी लेख पढ़ें।

चाहिये। शिव की प्रसन्नता के लिये ही इस व्रत को करना चाहिये। उस दिन उपवास रखकर रात्रि में जागरण करनेवाला व्यक्ति मानो अपने सभी धार्मिक कृत्यों का सम्पादन कर चुका है। इसके द्वारा व्यक्ति पापरहित हो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है(बृहद्ध पु./पू. ख./15/53-56)।

रामेश्वर, काशी एवं गंगातीर्थ की महिमा में बताया गया है कि इनके सेवन से पाप से छूटकर व्यक्ति कर्मों के अनुसार यातना भोगकर अन्त में मुक्त हो जाता है(बृहद्ध पु./पू. ख./16/7-8 इत्यादि)। गंगा के सन्दर्भ में बताया गया है कि सती ने अपने को दो रूपों में बाँटकर जन्म ग्रहण किया। उनका एक रूप गंगा तथा दूसरा रूप उमा का है। गंगा के रूप में वे शिव की जटाओं में तथा उमा के रूप में वे शिव के बामार्द्ध में विराजती हैं।

सती ते द्विविधा भूता गङ्गोमा च हिमालये।
एका धृता त्वया शीर्षे वामाङ्गेऽमूं धरिष्यसि।। (बृहद्ध. पु./म. ख./53/23)

इसी कारण से कहा जाता है कि जहाँ-जहाँ गंगा हैं वहाँ-वहाँ शिव भी विराजमान हैं।

यत्र यत्र ययौ गङ्गा तत्र तत्र महेश्वरः।। (बृहद्ध. पु./म. ख./52/6)

ऐसा लगता है कि शिव की पत्नी तथा शिव के सिरपर विराजमान होने के कारण ही गंगा को पवित्र माना गया है। क्योंकि जहाँ गंगा होगी उसे पृथ्वी का भाग न मानकर शिव का शिर माना जाना चाहिये।

तस्माद्गङ्गाश्रया देशा नैव पृथ्वी कदाचन।
विश्वात्मनो महेशस्य शिर एव हि ते मताः।। (बृहद्ध. पु./म. ख./54/16)

कहा गया है कि दक्षिणवाहिनी गंगा से सौ गुना पूर्ववाहिनी, उससे सौ गुना पश्चिमवाहिनी तथा उससे हजार गुना उत्तरवाहिनी गंगा का फल होता है।

दक्षिणायाः शतगुणा गङ्गा तु पूर्व्ववाहिनी।।
ततः शतगुणा प्रोक्ता गङ्गा पश्चिमवाहिनी।
तत्सहस्रगुणा प्रोक्ता गङ्गाचोत्तरवाहिनी।। (बृहद्ध. पु./म. ख./54/18-19)

गंगातीरपर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये(**त्यक्तुं मूत्रपुरीषादि गंगातीरं विवर्जयेत्।** बृहद्ध. पु./म. ख./54/57)। गंगाजल में तीर्थों का आवाहन करना आवश्यक नहीं है(**आवाहनञ्च तीर्थानां नापेक्ष्यं जाह्नवीजले।** बृहद्ध. पु./म. ख./55/29)। गंगातीरपर दूसरों की निन्दा करनेवालेपर विष्णुजी क्रुद्ध होते हैं(बृहद्ध. पु./म. ख./55/39)। स्वयं भगवान् शंकर गंगातटपर आकर मरणासन्न व्यक्ति के कान में विमल ज्ञान का उपदेश करते हैं जिससे उसको परम दर्शन(आत्मज्ञान) वा ज्ञान प्राप्त होता है। अत: गंगा के पास मरनेपर अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

शिवः स्वयं समागत्य गङ्गायां हि मुमूर्षतः।
कर्णे जपति विमलं ज्ञानं परमदर्शनम्।।

अत एव न सन्देहो गंङ्गामरणमोक्षणे। (बृहद्ध. पु./म. ख./56/76-77)

भगवान् शिव के सर्वदेवमय होने के कारण लिंगपूजन से सभी देवों की पूजा हो जाती है (**शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्।** बृहद्ध. पु./म. ख./57/59 तथा 31/38)[1] तथा उसमें किसी भी देवता का आवाहन एवं विसर्जन नहीं किया जाता। इसी प्रकार गंगा प्रवाह तथा शालिग्राम शिला में भी देवताओं के पूजन में आवाहन एवं विसर्जन नहीं किया जाता।

गङ्गाप्रवाहे शालग्रामशिलायाञ्च सुराच्चर्ने।।
द्विजपुङ्गव नापेक्ष्ये आवाहनविसर्ज्जने। (बृहद्ध. पु./ म. ख./57/4-5)

जो लोग क्रूरकर्मा, पापी तथा दुष्ट हैं वे गंगासेवन करने के कारण पहले गंगा पिशाच होते हैं तथा यातना भोगने के बाद श्रीमान् के यहाँ जन्म लेकर पुनः गंगा का सेवनकर मुक्त होते हैं (बृहद्ध. पु./म. ख./55/63-64 आदि)। गंगा सभी को तारनेवाली होने के कारण श्रेष्ठ तीर्थ मानी जाती हैं (**नास्ति गंङ्गासमं तीर्थं।** बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/2/34)।

काशी की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि यहाँ गंगा उत्तरवाहिनी है तथा यह शिव के त्रिशूल पर टिकी हुई है। इसी कारण से इस नगरी का विशेष माहात्म्य है। मायापुरी को हरिहरात्मक कहा गया है क्योंकि वहाँपर ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों शिवलिंग का सेवन करते हैं (बृहद्ध. पु./म. ख./54/10-11)। सती के मृतशरीर के अंग जिस-जिस जगह गिरे वे देवी के सिद्ध पीठ कहलाये। उन-उन पीठों में भगवान् शिव भी पाषाणलिंगरूप में अवस्थित हैं (अतः वे पीठ भी शैवतीर्थ ही माने गये हैं)।

यत्र यत्र सती–देह–भागास्तत्र स्वयं मुने।
पाषाण–लिङ्ग–रूपेण ह्यधिष्ठाय व्यसेवत। (बृहद्ध. पु./म. ख./40/53-54)

इस पुराण में भागवत की परिभाषा आम मान्यताओं से हटकर दी गई है। आम मन्यता तो यह है कि जो विष्णु या उनके किसी अवतार के उपासक हैं, उन्हें भागवत कहा जाता है। भगवान् विष्णु अदिति को भागवत के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि "जो रुद्राक्षमाला धारणकर रुद्र या विष्णु का पूजक है उसे भागवत जानना चाहिये। और ऐसा व्यक्ति मुझे नित्य ही धारण करता है। जो शिव, शंकर, रुद्र, नीलकण्ठ, त्रिलोचन आदि शब्दों का उच्चारण करता है अथवा वृषकेतु, भव, ईशान, श्रीकण्ठ, पार्वतीपति इत्यादि का उच्चारण करता है वह भी मुझे नित्य धारण करता है (अर्थात् वह भी भागवत है)।"[2]

---

1. **योनिः साक्षात् भगवती लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।**
तयोस्तु पूजनेन स्यात् सर्वदैवतपूजनम्।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./31/38)

2. भागवत की इस प्रकार की परिभाषा नारद महापुराण (पूर्वभाग 5/68-69, 72-73 आदि) तथा बृहन्नारदीय (उप) पुराण (5/53-55, 57-58) में भी दी ई है। विशेष जानकारी के लिये इन दोनों से संबंधित अध्याय देखें।

यश्च रुद्राक्षमालावान् रुद्रविष्णुप्रपूजकः।
स वै भागवतो ज्ञेयः स मां धरति नित्यशः।।
शिव शङ्कर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन।
इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः।।
वृषकेतो भवेशान श्रीकण्ठ पार्व्वतीपते।
इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः।। (बृहद्ध. पु./म. ख./45/63, 70-71)

भगवान् शिव एंव विष्णु

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-ये तीनों ही प्रमुख देवता तात्त्विक दृष्टि से अभिन्न हैं। एक ही तत्त्व, ब्रह्मरूप सदाशिव, निज इच्छा से अपने को इन रूपों में प्रकट हो नानाविध सृष्टिव्यापार का संचालन करता है। वह ब्रह्मा होकर सृष्टि करता तथा विष्णु होकर पालन करता है।

एवं ससर्ज वै ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता सनातनः।
विष्णुः पालयते सर्व्वमवतीर्य्य निजेच्छया।। (बृहद्ध. पु./मध्यख./32/45)

भगवान् विष्णु की वन्दना करते हुए एक स्थलपर देवताओं ने उन्हें शिव एवं शिवरूप(कल्याणकारी) कहा है(**शिवाय शिवरूपाय ....च ते नमः।** बृहद्ध. पु./म. ख./40/68)। एक अन्य स्थलपर देवी विष्णु भगवान् के प्रति कह रही हैं कि शिव, ब्रह्मा तथा तुम एक दूसरे से भिन्न नहीं हो। ....आप सबकी अभिन्नता में भेद देखनेवाला घोर नरक को जाता है।

शिवो ब्रह्मा तथा त्वञ्च न भिन्ना वै कदाचन।

..

अभिन्नानाञ्च भेदार्थी नारकी परमो मतः। (बृहद्ध. पु./मध्यख./41/96-97)

भगवान् शिव तथा अन्य सभी प्रमुख देव मूलतः एक होते हुए भी गुण एवं कार्यों की भिन्नता से लोक में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। इन अलग-अलग रूपवाले(संसाररूपी रंगमंच के) अभिनेता देव जबतक लोककल्याण के लिये अपनी-अपनी भूमिका निभाते रहते हैं तबतक उनके दृश्य आपसी व्यवहार समय एवं आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। कभी उन्हें एक दूसरे से लड़ना पड़ता है तो कभी एक दूसरे से प्रेम का व्यवहार भी करना पड़ता है। परन्तु उनका लड़ना या प्रेम करना या एक दूसरे की उपासना करना महज एक नाटक होता है जो लोककल्याण या लोकआदर्श की स्थापना के वास्ते होता है। उनका इस प्रकार का व्यवहार नाटक इसलिये होता है कि नाटक के पात्र तीनों देव एक ही तत्त्व की अभिव्यक्तियाँ हैं और वे तीनों इस बात को जानते भी हैं फिर भी वे अपना व्यवहार इस प्रकार प्रकट करते हैं मानो वे अलग-अलग हस्तियाँ हों।

उनके इस प्रकार व्यवहार करने के बावजूद भी एक उच्चतर धरातलपर इनमें न कोई मतभेद होता है और न एक दूसरे से प्रतिद्वन्दिता, अपितु आपस में प्रेमभाव होता है। यही कारण है कि विभिन्न

पुराणों में यह कहा जाता है कि भगवान् शिव को विष्णु तथा विष्णु को शिवजी अत्यन्त प्रिय हैं। इस पुराण में भी भगवान् शिव एवं विष्णु के आपसी प्रेम एवं तात्त्विक एकता को प्रदर्शित करनेवाली एक रोचक कथा का वर्णन है। यहाँपर हम उसे संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे। यह कथा पूर्वखण्ड के अध्याय 9 और 10 में आयी है।

एक बार विष्णुजी, स्वप्न में देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्तिवाले, त्रिशूल एवं डमरूधारी, स्वर्णाभूषणों से भूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादिसिद्धसेवित त्रिलोचन भगवान् शिव आनंदातिरेक से उन्मत्त होकर उनके सामने नाच रहे हैं। उन्हें देखकर भगवान् विष्णु हर्ष से गद्‌गद् हो शय्यापर उठकर बैठ गये और कुछ देर तक ध्यानस्थ बैठे रहे। उन्हें इस प्रकार बैठे देखकर श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि भगवन्! आपके इस प्रकार उठ बैठने का क्या कारण है? भगवान् ने कुछ देरतक उनके इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया और आनंद में डूबे हुए चुपचाप बैठे रहे। अन्त में वे इस प्रकार बोले - हे देवि! मैंने अभी स्वप्न में भगवान् शिव का दर्शन किया है। उनकी छवि ऐसी अपूर्व आनंदमय एवं मनोहर थी कि देखते ही बनती थी। मालूम पड़ता है कि शंकरजी ने मुझे याद किया है। अहोभाग्य! चलो कैलास में चलकर हमलोग उनका दर्शन करें।

दोनों कैलास की ओर मुश्किल से आधी दूर गये होंगे कि देखते हैं भगवान् शंकर स्वयं गिरिजा के साथ उनकी ओर चले आ रहे हैं। अब भगवान् विष्णु के आनन्द का क्या ठिकाना? पास आते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेम से मिले। मानो प्रेम और आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। एक दूसरे को देखकर दोनों के नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे और शरीर पुलकायमान हो गया। दोनों ही एक दूसरे से लिपटे हुए कुछ देर मूकवत् खड़े रहे। प्रश्नोत्तर होनेपर मालूम हुआ कि शंकरजी को भी रात्रि में इसी प्रकार का स्वप्न हुआ कि मानो विष्णु भगवान् को वे उसी रूप में देख रहे हैं जिस रूप में वे अब उनके सामने खड़े हैं। दोनों के स्वप्न का वृत्तान्त अवगत होनेपर दोनों ही लगे एक दूसरे से अपने यहाँ लिवा ले जाने का आग्रह करने। दोनों के आग्रह में इतना अलौकिक प्रेम था कि यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय?

इतने में नारदजी कहीं से आ निकले। बस फिर क्या था? लगे दोनों ही उनसे निर्णय कराने कि कहाँ चला जाय? बेचारे नारदजी तो स्वयं परेशान थे। उस अलौकिक मिलन को देखकर वे स्वयं अपनी सुध-बुध भूल गये और मस्त होकर लगे दोनों का गुणगान करने। अब निर्णय कौन करे? अन्त में यह तै हुआ कि भगवती उमा जो कह दें वही ठीक है। भगवती उमा पहले तो कुछ देर चुप रहीं। अन्त में वे दोनों को लक्ष्य करके बोलीं -

युवयोर्यादृशी प्रीतिर्दृश्यते ह्यनुपाधिका।
मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम्।।
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।

मन्ये तया प्रमाणेन आत्मिकोऽ न्यस्तनुर्मिथः।।
या प्रीतिर्दर्शिता देवौ युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भार्ये आवां पृथङ् न वाम्।।
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः।।
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च्च द्वयोः।।

{बृहद्धर्म पु./पूर्वा. 9/श्लोक 41 तथा उससे आगे(जो अन्य प्रतियों में है तथा जिसे पाद टिप्पणी में दिया गया है।)}

भावार्थ है-हे नाथ! हे नारायण! आपलोगों के निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेम को देखकर तो यही समझ में आता है कि आपके निवासस्थान अलग-अलग नहीं हैं, जो कैलास है वही बैकुण्ठ है और जो बैकुण्ठ है वही कैलास है; केवल नाम में ही भेद है। यही नहीं, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी आत्मा भी एक ही है, केवल शरीर देखने में दो हैं। और तो और, मुझे तो अब यह भी स्पष्ट दीखने लगा कि आपकी भार्यायें भी एक ही हैं, दो नहीं । जो मैं हूँ वही श्रीलक्ष्मी हैं और जो लक्ष्मी हैं वही मैं हूँ। केवल इतना ही नहीं, मेरी तो अब यह दृढ़ धारणा हो गई है कि आप लोगों में से एक के प्रति जो द्वेष करता है वह मानो दूसरे के प्रति ही करता है, एक की जो पूजा करता है वह स्वाभाविक ही दूसरे की भी करता है और जो एक को अपूज्य मानता है वह दूसरे की भी पूजा नहीं करता।

उमा देवी आगे कहती हैं कि मैं तो यह समझती हूँ कि आप दोनों में जो भेद मानता है उसका चिरकालतक घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आप मुझे इस प्रसंग में अपना मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवंचना कर रहे हैं, मुझे चक्कर में डाल रहे हैं, मुझे भुलावे में डाल रहे हैं(क्योंकि किसी भी तरफ का निर्णय लेने का अर्थ होगा इन दोनों महानुभावों में अन्तर करना)। अत: अब मेरी यह प्रार्थना है कि आपलोग दोनों ही अपने-अपने लोक को पधारिये। श्रीविष्णु यह समझें कि हम शिवरूप से बैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूप से कैलास जा रहे हैं।

इस उत्तर को सुनकर दोनों परम प्रसन्न हुए और भगवती उमा की प्रशंसा करते हुए दोनों प्रणामालिंगन के बाद हर्षित हो अपने-अपने लोक को चले गये।

(बृहद्ध. पु. अध्याय 9)

लौटकर जब श्रीविष्णु बैकुण्ठ पहुँचे तो लक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि-प्रभो! सबसे अधिक प्रिय आपको कौन हैं? इसपर भगवान् विष्णु बोले-

न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम।

अहेतुकः प्रियोऽसौ मे स्वकायः प्राणिनामिव।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/6)

अर्थात्-प्रिये! मेरे प्रियतम केवल श्रीशंकर हैं। देहधारियों को अपने देह की भाँति वे मुझे अकारण ही प्रिय हैं।

एक बार मैं और शंकरजी दोनों ही पृथ्वी पर घूमने निकले। मैं अपने प्रियतम की खोज में इस आशय से निकला कि मेरी ही तरह जो अपने प्रियतम की खोज में देश-देशान्तरों में भटक रहा होगा, वही मुझे अकारण प्रिय होगा। थोड़ी देर के बाद मेरी श्रीशंकरजी से भेंट हो गयी। ज्योंही हम लोगों की चार आँखें हुईं कि हम लोग पूर्वजन्मार्जित विद्या की भाँति एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गये। वास्तव में मैं ही जनार्दन हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग-अलग दो घड़ों में रक्खे हुए जल की भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है। शंकरजी के अतिरिक्त शिव की पूजा-अर्चना करनेवाला शिवभक्त भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिव की पूजा नहीं करते वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते।

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव।।
शिवादन्यःप्रियो मेऽस्ति भक्तो यः शिवपूजकः।
शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम।। (बृहद्ध. पु./पूर्व ख./10/16-17)

विष्णुजी के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मीजी बड़ी दुःखी हुईं तथा अपने को शिवपूजक न मानकर आत्मग्लानि से भर गयीं। तब भगवान् ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा कि मैंने तुम्हें शिवपूजा में प्रवृत्त करने के लिये ही ये सब बातें कही हैं। अब आज से तुम प्रतिदिन विधिपूर्वक शिव की पूजा प्रारंभ कर दो। ऐसा करने से तुम मुझे शंकर के समान ही प्रिय हो जाओगी।

तदनन्तर लक्ष्मीजी ने नारदजी से दीक्षा ग्रहणकर शिव-पूजा प्रारम्भ कर दी। वे संकल्पपूर्वक फूलों में सर्वश्रेष्ठ एक हजार कमलों से नित्य सुवर्णलिंग की त्रिकाल पूजा करने लगीं। इस प्रकार पूजा करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार अकस्मात पूजा के समय दो फूल घट गये, जिसके कारण लक्ष्मी को बहुत चिन्ता हुई। पूजा के समय उठकर अन्य कमल लाया भी नहीं जा सकता क्योंकि उठ जाने से पूजा खण्डित हो जाती है। कमल के अभाव में संकल्प भी पूरा नहीं हो सकता। इसी उधेड़-बुन में उनके मन में एक बात याद आयी, जो विष्णुजी ने कभी लक्ष्मी के प्रति कहा था। विष्णु की मान्यता से भिन्न शिव की मान्यता नहीं हो सकती क्योंकि वे दोनों अभिन्न हैं। उसे यादकर लक्ष्मी ने अपने दोनों पयोधर कमलों की जगह शिव को समर्पित करने का निश्चय कर लिया तथा अपने बामस्थ पयोधर को काटकर शिव को अर्पित कर दिया। जैसे ही उन्होंने दूसरा काटना चाहा भगवान् शिव प्रकट हो गये और उनके छिन्न अंग को पुनः यथावत् बनाकर उनपर प्रसन्न हो वरदान माँगने को कहा। उत्तर में लक्ष्मी ने केवल भक्ति का वर माँगा। परन्तु शिवजी ने कहा कि आप का छिन्न

अंग लोक में श्रीफल के रूप में पैदा होगा और यह वृक्ष तथा इसके फल तथा पत्ते मुझे सर्वाधिक प्रिय होंगे। इस प्रकार जबतक सूर्य और चाँद रहेंगे तबतक तुम्हारी कीर्ति इस वृक्ष के माध्यम से बनी रहेगी। यह वृक्ष तुम्हारी भक्ति का मूर्तिमान स्वरूप होगा। इसके त्रिदलयुक्त पत्ते हमें गंगाजल के सामन ही प्रिय होंगे(बृहद्ध. पु./पू. ख./10/65-69)। इस प्रकार लक्ष्मी शिव की प्रसन्नता को प्राप्तकर विष्णुजी की अति प्रिया बन गयीं।

उपरोक्त कथा से अन्य कई बातों के अलावा निम्न बातें भी स्पष्ट होती हैं। प्रथम तो यह कि न केवल तात्त्विक या मूलरूप से शिवजी एवं विष्णुजी में अभिन्नता है अपितु व्यवहार में भी उनमें इतना निष्काम, अहेतुकी प्रगाढ़ प्रेम एवं आपसी समझ है कि वे अपने को एक दूसरे से भिन्न समझते ही नहीं। दूसरी बात यह है कि इन दोनों के प्रेम को आदर्श माना जा सकता है। इनका प्रगाढ़ प्रेम इतना है कि दोनों एक दूसरे के बारे में स्वप्न देखते रहते हैं, एक दूसरे का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। इसीलिये शास्त्रों में सर्वत्र यही कहा गया है कि विष्णु के हृदय में शिव का तथा शिव के हृदय में विष्णु का निवास है। भाव यह है कि निरन्तर वे दोनों एक दूसरे का चिन्तन एवं ध्यान करते रहते हैं। यह सब एक दूसरे के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की वजह से होता है। इन दोनों के परस्पर चिन्तन एवं ध्यान को लेखकों ने अलंकारिक रूप दे दिया है और कहते हैं कि सत्त्वगुणी विष्णु श्वेतवर्ण के थे एवं तमस प्रकृतिवाले रुद्रदेव नील अथवा श्यामवर्ण के, परन्तु एक दूसरे का ध्यान करने के कारण विष्णु की वृत्तियाँ शिवाकार और शिव की वृत्तियाँ वैष्णवाकार हो गयीं। अर्थात् विष्णु अपने को शिव एवं शिव अपने को विष्णुरूप समझने लगे। इस कारण से उनके रूप भी बदल गये। अर्थात् विष्णु नीले और शिव गौर वर्णवाले हो गये।

तीसरी बात यह है कि जो इन दोनों देवों में किसी एक की भी पूजा करता है वह दूसरे की भी पूजा करता है और जो एक की निन्दा करता है वह दूसरे की भी निन्दा करता है। शिव की निन्दा करनेवाले का कभी कल्याण नहीं हो सकता(**शिवशून्यः शिवद्वेषी निष्कल्याणः समार्थकाः।** बृहद्ध. पु./मध्य ख./37/62)। इसी प्रकार इन दोनों देवों में भेद या अन्तर करनेवाले का चिरकालतक घोर पतन होता है।

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भेदकृद्वां चिरं पतेत्।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./9/42)

चौथी बात यह है कि शिवपूजकपर विष्णु भगवान् बहुत प्रसन्न रहते हैं जबकि शिवपूजारहित व्यक्तियों से वे नफरत करते हैं।

अगली बात यह कि बिल्ववृक्ष लक्ष्मी की शिव-भक्ति का साकार विग्रह है और इस कारण से यह वृक्ष शिव की आज्ञा से शिव के समान ही पूज्य है।

उपसंहार

इस प्रमुख उपपुराण का नामकरण धर्म संबंधी तथ्यों के विवेचन करने के कारण ही किया गया है। इसमें शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंपर प्रकाश डाला गया है। निर्गुणरूप में उन्हें ओंकार, अव्यक्त, परमात्मा, वेदों द्वारा अगम्य तथा परमगति आदि कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि सभी देवों के स्रष्टा, विश्वरूप, स्थावर-जंगम-सबके स्रष्टा, पंचमुखी, त्रिनेत्र, शशी, बाघाम्बर, मुण्डमाला, पिनाक तथा त्रिशूल आदि को धारण करनेवाला, आशुतोष, आनंद प्रदान करनेवाला, करुणासागर, मोक्ष प्रदान करनेवाला, सर्वेश्वर, सनातन, आदि पुरुष तथा पूजनीयों में श्रेष्ठ आदि-आदि कहा गया है।

चूँकि भगवान् शिव आवागमन से मुक्त करनेवाले, इष्टसाधक, परमगति तथा आशुतोष हैं, इसलिये उनकी उपासना करनी चाहिये। उनकी उपासना देव, दानव, मानव, यक्ष, किन्नर आदि सभी वर्ग के लोग करते रहे हैं। लक्ष्मी, भगीरथ, दक्ष तथा राम आदि जैसे लोगों ने उनकी उपासना से लाभ उठाया है। जहाँ शिव की पूजा नहीं होती उस धार्मिक कृत्य को पूर्ण नहीं माना जाता, इसलिये उसका फल भी नहीं मिलता। संसार-सागर से छूटने के लिये शिवनाम के सिवा और कोई दवा नहीं है। उनके नामजप से पापों के ढेर नष्ट हो जाते हैं। यदि सभी देवों की पूजा करके शिव की पूजा न की जाय तो वह पूजा एवं यज्ञ व्यर्थ हो जाता है।

नामजप के अलावा शिवपूजा का दूसरा प्रमुख रूप लिंगपूजा है। धातु, पाषाण अथवा मिट्टी का लिंग वेदी सहित बनाकर पूजनोपचार के साथ पूजना चाहिये। भगवान् शिव की पूजा में गंगाजल एवं बिल्वपत्र की विशेष महिमा है। भगवान् शिव को ये दोनों ही वस्तुएँ बहुत प्रिय हैं। बिल्व की इतनी महिमा बतायी गई है कि इसके वृक्ष को शिव का स्वरूप ही मानना चाहिये तथा उसकी पूजा करनी चाहिये। इसके त्रिदलयुक्त पत्ते में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों का वास माना गया है। यह छः महीनेतक बासी नहीं माना जाता। अर्थात् इसे एक बार तोड़कर छः मासतक चढ़ाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है। बिल्ववृक्ष को आंगन में नहीं लगाना चाहिये। बिल्ववृक्ष का जहाँ वन है उसे वाराणसी जैसा पवित्र समझना चाहिये क्योंकि वहाँ शिवजी अपने गणों सहित विराजमान रहते हैं। शिवलिंग की पूजा से सभी देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है।

शिवरात्रि व्रत में उपवास, रात्रि के चारों प्रहर में शिवपूजा तथा जागरण से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। रामेश्वर, काशी तथा गंगा आदि तीर्थों की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इनके सेवन से पापमुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। गंगा की पवित्रता इस कारण से है कि ये शिव की पत्नी हैं तथा उनके शिरपर सदैव विराजमान रहती हैं। जहाँ-जहाँ गंगा होती, वहाँ-वहाँ शिव भी होते हैं। गंगा के निकट मरणासन्न व्यक्ति के कान में स्वयं भगवान् शंकर विमल ज्ञान का उपदेश करते हैं। अतः गंगा के समीप शरीर छोड़नेवाले को मुक्ति अवश्य मिलती है। परन्तु अगर व्यक्ति पापी है तो

पहले वह गंगापिशाच की नारकीय यातना को भोगने के बाद श्रीमानों के यहाँ जन्म लेकर तथा गंगा का पुनः सेवनकर मुक्त हो जाता है।

उत्तर वाहिनी गंगा का सर्वाधिक महत्त्व है इसीलिये काशी का भी महत्त्व अधिक है क्योंकि वहाँ पर गंगा उत्तर वाहिनी हैं। गंगाजल तथा शालिग्राम शिला में शिवलिंग की भाँति ही देवताओं की पूजा करते समय उनका आवाहन तथा विसर्जन नहीं किया जाता क्योंकि इन तीनों में सभी देवता सदा ही विराजमान होते हैं। चूँकि भगवान् शिव (का लिंग) सर्वदेवमय हैं इसलिये इनकी पूजा हो जानेपर सभी देव सन्तुष्ट हो जाते, अर्थात् पूजित हो जाते हैं।

भगवान् शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा ये तीनों ही देवता मूलरूप से अभिन्न हैं। शिवजी अपनी स्वेच्छा से इन रूपों में प्रकट हो सृष्टिव्यापार का संचालन करते हैं। ये तीनों देव मूलरूप से एक होते हुए भी व्यावहारिक स्तरपर कार्यों की भिन्नता से लोक में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार एक ही अभिनेता अलग-अलग नाटकों में अपनी अलग-अलग भूमिका निभाने के कारण अलग-अलग नामों से जाना जाता है। भगवान् विष्णु एवं शिव में अत्यधिक प्रेम है जिस कारण दोनों एक दूसरे को निरन्तर याद करते रहते अथवा ध्यान करते रहते हैं। एक के हृदय में दूसरे का निवास है। विष्णु के यह कहनेपर कि शिव तथा शिव भक्तों से बढ़कर प्रिय मुझे कोई नहीं है, लक्ष्मी ने शिव की उपासनाकर उन्हें सन्तुष्ट किया जिसके फलस्वरूप उनके यश को बढ़ानेवाले श्रीफल की उत्पत्ति हुई तथा विष्णु की अत्यन्त प्रिया होने का सौभाग्य मिला।

भगवान् शिव तथा विष्णु में जो किसी एक की पूजा करता है, वह दूसरे की भी करता हैऔर जो एक की निन्दा करता है वह दूसरे की भी निन्दा करता है। इन देवों में भेद करना अथवा इनमें से किसी एक की निन्दा करना नरक को ले जानेवाला अथवा दुर्गति का कारण होता है।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

दम की महत्ता

दम अर्थात् इन्द्रिय-संयम की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि-

दमेनहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
सांख्यं च योगश्चकुलंचजन्मतीर्थाभिषेकश्चनिरर्थकानि।।

(पद्ममहापु. सृष्टिखण्ड 19/318)

अर्थात्-दम से रहित व्यक्ति को छः अंगों सहित वेद का अध्ययन भी पवित्र नहीं कर सकता। दम के अभाव में सांख्य, योग, कुल, गोत्र तथा तीर्थस्नान सभी निरर्थक हैं। अर्थात् उनके फल प्राप्त नहीं होते।